(समयसार) १२० कलश का भावार्थ। **यहाँ शुद्धनय के द्वारा एकाग्रता का अभ्यास करने को कहा है।** अर्थात् क्या कहते हैं? शास्त्र पढ़ने का अभ्यास करना, वह यहाँ नहीं कहा। मैं ज्ञानस्वरूप हूँ—ऐसे परिणमन में आना, वह शुद्धनय का अभ्यास है। यह आत्मा ज्ञानस्वरूप है, ज्ञायक है, इसके सन्मुख होकर परिणमन हो, वह शुद्धनय का अभ्यास कहा जाता है। सूक्ष्म बात है, भाई! मूल वस्तु पहले पूर्ण आनन्द और पूर्ण ज्ञान, उसे दृष्टि में अनुभव लेकर और पश्चात् भी उसमें बारम्बार एकाग्रता का अभ्यास करना, इसका नाम शुद्धनय का अभ्यास है।

कितने ही तो इसमें कहते हैं कि यह चौथे गुणस्थान की बात नहीं है, यह सातवें की बात है, वीतराग समकित की (बात है) क्योंकि यहाँ कहा है न कि समकिती को आस्रव-बन्ध नहीं है, इसलिए यह तो वीतरागी समकित की व्याख्या है। यहाँ हेमराजजी स्वयं कहते हैं, स्पष्ट करते हैं, पाठ भी स्पष्ट करते हैं।

यहाँ सम्यग्दर्शन पहली चीज़ ही कोई ऐसी है कि अनन्त काल में इसने स्वस्वरूप पूर्ण अखण्ड एक है, इस पर नजर नहीं की है, उस पर झुकाव नहीं किया है, उसका ढलान ही नहीं किया है। बाकी सब किया। सब अर्थात्? दूसरी क्रियाएँ नहीं। शुभाशुभभाव असंख्य प्रकार के हैं, वे किये। पूर्ण शुद्धस्वरूप है, उसकी एकाग्रता का अभ्यास, वह शुद्धनय का अभ्यास है। आहाहा! है?

'मैं केवल ज्ञानस्वरूप हूँ, शुद्ध हूँ' – ऐसा जो आत्मद्रव्य का परिणमन.. आत्मद्रव्य शुद्ध है, उसके सन्मुख होकर शुद्धता का परिणमन (होवे, वह शुद्धनय है)। कलश में लिखा है। अशुद्ध परिणमन मिथ्यादृष्टि को होता है। कलश में है। आहाहा! पहले उसका ज्ञान तो करे। पूर्णानन्द का नाथ प्रभु, वस्तु है। पूर्ण ज्ञान-आनन्द आदि से भरपूर तत्त्व है। भले क्षेत्र से शरीरप्रमाण हो, असंख्य प्रदेशी हो, क्षेत्र से भले अनन्त प्रदेश न हो, स्वभाव से तो अगाध ज्ञान, दर्शन, आनन्द आदि (गुणों से पूर्ण है)।

यहाँ यह कहा। इसमें स्पष्टीकरण आया। शुद्धनय का एकाग्रता का अभ्यास अर्थात् कि वस्तुस्वरूप जो शुद्ध है, उसकी एकाग्रता अर्थात् उसका शुद्धपरिणमन (होवे), वह शुद्धनय का अभ्यास कहने में आता है। आहाहा! परन्तु वह अभ्यास होता कब है? कि प्रथम शुद्धस्वरूप की दृष्टि में आकर सम्यग्दर्शन-सम्यग्ज्ञान हो, तब उसका शुद्ध परिणमन होता है और तब तत्पश्चात् एकाग्रता, शुद्ध परिणमन की एकाग्रता (होती है)। अभ्यास है न? जिससे केवलज्ञान होता है। आहाहा! अब ऐसी बातें। उसमें बाह्य के कोई व्रत, तप, भक्ति, पूजा, ये सब मन्दिर बनाना और यह सब कुछ सहायक होता होगा या नहीं उसमें? यह कहते हैं कि जरा भी सहायक नहीं होता। ऐसी बात है।

अन्दर पूरी निरपेक्ष वस्तु पड़ी है। अतीन्द्रिय अनन्त गुण का समुद्र, उसकी अनुभव की दृष्टि करके शुद्ध परिणमन को बढ़ाना, वह एकाग्रता है। वह एकाग्रता का अभ्यास है। आहाहा!

मुमुक्षु : एक अग्र का अर्थ क्या हुआ।

पूज्य गुरुदेवश्री : एक अग्र अर्थात् द्रव्य को मुख्य को लक्ष्य में लेना। एक अग्र – एक ही मुख्य पूरा द्रव्य। एक अग्र अर्थात् मुख्य। आहाहा!

मुमुक्षु : एक अर्थात् आत्मा।

पूज्य गुरुदेवश्री : आत्मा। हाँ। एक स्वरूपी भगवान पूर्ण आनन्द, एकरूप जो है। एक आता है न? सबमें आता है। ३२० गाथा में आया है। जो सकल निरावरण प्रभु वस्तु जो है, वह सकल निरावरण अखण्ड और एक वस्तु है। आहाहा! भाई! यह तो अपूर्व बात है। शास्त्र को पढ़ना और अभ्यास बहुत करना, इससे वह शुद्धनय का अभ्यास है, ऐसा

नहीं है। आहाहा! उसमें पढ़ने का विकल्प भी जहाँ ज़हर जैसा है। आहाहा! अरे! जिसके जन्म-मरण का अन्त लाना, प्रभु! वह कोई अलौकिक चीज़ है! उसका पहले ज्ञान में निर्णय होना चाहिए।

वह वस्तु जो पूर्ण शुद्ध है, वह अखण्ड और एक और सकल निरावरण है। प्रत्यक्ष प्रतिभासमय अविनश्वर शुद्ध पारिणामिक सहजभावरूप लक्षण जिसका है, ऐसा निज परमात्मद्रव्य, उसकी एकाग्रता, वह शुद्धनय की एकाग्रता है। ऐसी बात है, भाई! दूसरा क्या हो? आहाहा! अनन्त काल से भटकता है।

मुमुक्षु : अकेला आत्मा उपादेय आया।

पूज्य गुरुदेवश्री : अकेला आत्मा ही उपादेय है; पर्याय भी नहीं, गुण-भेद भी नहीं। आहाहा! लोगों को एकान्त लगे अथवा यह बात ऐसी कि वीतराग समकिती की है, सातवें और आठवें गुणस्थान की बात है—ऐसा कहते हैं। प्रभु! ऐसा नहीं है। तू पूर्णस्वरूप प्रभु है, (वह) दृष्टि में आवे! आहाहा! पूर्ण.. पूर्ण.. पूर्ण.. जैसा (है, वैसा)।

मुमुक्षु : तुझमें कमी क्या है?

पूज्य गुरुदेवश्री : यह तो आया नहीं था? स्तवन में नहीं (आया) था? 'प्रभु मेरे सब बातें तू पूरा, प्रभु मेरे तुम सब बातें पूरा, पर की आश करे कहाँ प्रीतम।' 'पर की आश' (अर्थात्) राग और विकल्प और परद्रव्य त्रिलोक के नाथ की भी क्या आशा करे? 'पर की आश कहाँ करे प्रीतम, कहाँ किन बातें तुम अधूरा? किस बातें तू अधूरा, प्रभु मेरे तुम सब बातें पूरा।' आहाहा! यहाँ बात ऐसी है, भाई! आहाहा! एक समय की पर्याय जितना भी नहीं, केवलज्ञान की पर्याय जितना भी नहीं। आहाहा! सब गुणों से पूरा है न, प्रभु! यह तुझे विश्वास में नहीं आता। उसका माहात्म्य दिखायी नहीं देता।

इसलिए यहाँ कहते हैं कि **आत्मद्रव्य का..** द्रव्य अर्थात् त्रिकाली वस्तु, परिपूर्ण वस्तु। उसका जो पर्याय में परिणमन (होता है)... आहाहा! उसे सब हो गया। आहाहा! **वह शुद्धनय। ऐसे परिणमन के कारण..** पूर्ण शुद्ध भगवान अखण्ड निर्विकल्प वस्तु है, उसके अभ्यास के कारण। आहाहा! लोगों को व्यवहारवालों को तो ऐसा लगता है कि कुछ व्यवहार (करें), उससे लाभ (होगा)। गजरथ करें, रथयात्रा (निकालें), मन्दिर

(बनावें), दस-दस, बीस-बीस अपवास करें। प्रभु! यह वस्तु तो बाह्य की चेष्टा की क्रियाएँ हैं, राग है। आहाहा! जिसमें प्रभु आया नहीं, उसे तू स्पर्श करता है, वह तो स्वरूप से भ्रष्ट है। राग के विकल्प का भाव, उसमें प्रभु चैतन्यद्रव्य आया नहीं। उसके स्वरूप के भाव का जिसमें अभाव है, उसके भाव में उत्साह और उसके परिणमन की क्रिया (करे), वह कोई धर्म नहीं है। आहाहा!

यहाँ तो वहाँ तक कहा, नियमसार में! आहाहा! चार भाव से अगोचर है। आहाहा! राग से तो अगोचर है, चार भाव से अगोचर है। अर्थात्? कि चार भाव की पर्याय है, उसके आश्रय से वह ज्ञात हो, ऐसा नहीं है। पर्याय के आश्रय से ज्ञात हो, ऐसा चैतन्य नहीं है। ऐसा भगवान पूर्ण है। आहाहा! अरे! यहाँ जरा सब्जी अच्छी हुई हो और दाल अच्छी हुई हो, दूधपाक खावे, वहाँ हो... हो (जाता है)। बैल की तरह होहकार करता है। आहाहा! तृप्त-तृप्त हो जाए। अरे रे! प्रभु! क्या है? भाई! कहाँ चला गया? प्रभु! तेरे घर में आनन्द है न, नाथ! आहाहा! उस आनन्द को स्पर्श कर परिणमन होना, वह शुद्धनय का एकाग्रता का अभ्यास है। आहाहा! ऐसी बात है। और वापस कहे कि, पूरे दिन भक्ति, पूजा, वांचन यह तो होता है। यह हो, वह सब हेयबुद्धि से है। आहाहा! दुनिया को बैठना, (जँचना) पण्डित और रूढ़िगत में लग गये हैं अनादि से, उन्हें ये बात बैठना (कठिन पड़ती है)। आहाहा!

वह शुद्धनय। ऐसे परिणमन के कारण वृत्ति ज्ञान की ओर उन्मुख होती रहे.. देखा? परिणति। वृत्ति अर्थात् परिणति। वर्तमान शुद्ध द्रव्य के आश्रय से हुई परिणति, वही परिणति अन्दर उन्मुख हुआ ही करती है, द्रव्य-सन्मुख झुका ही करती है। आहाहा! **और स्थिरता बढ़ती जाये, सो एकाग्रता का अभ्यास।** यह तुम्हारे प्रश्न का स्पष्टीकरण आया। भावार्थ में भी यह है। आहाहा!

भाई! यह तो जन्म-मरणरहित (होने का) मार्ग है, बापू! अनन्त.. अनन्त.. अनन्त.. काल से.. आहाहा! अशुद्धता को रगड़ा है। जैसे वह मिथ्यात्व संसार कहा है न, मिथ्यात्व आस्रव है और मिथ्यात्व संसार है; वैसे अशुद्ध परिणमन, वह संसार है। उसमें कहीं आया है अवश्य। कहीं आया है। मिथ्यात्व के परिणाम अशुद्धरूप हैं। मिथ्यात्व के परिणाम ही अशुद्धरूप हैं। दया, दान, व्रत, भक्ति के भाव, वे मेरे हैं - ऐसा जो मिथ्यात्वभाव, (वह अशुद्धरूप है)। १२१ (कलश में) डाला है। मिथ्यात्व के परिणाम ही अशुद्धरूप हैं

अर्थात् दूसरे अशुद्ध हैं, उनकी यहाँ गिनती नहीं है। आहाहा! मिथ्यात्व ही संसार है। अव्रत, प्रमाद के परिणाम, वह तो अल्प-अल्प संसार है, उसे गौण गिनकर और अल्प काल में उसक अभाव हो जानेवाला है। आहाहा! वह परमात्मा होनेवाला है। यह अस्थिरता रहनेवाली नहीं है। आहाहा!

ऐसे चिद्बिम्ब को जहाँ पकड़ा। आहाहा! ध्रुव चिद्बिम्ब भगवान चैतन्य द्रव्यस्वभाव सकल निरावरण परमात्मा... आहाहा! त्रिकाल सकल निरावरण... आहाहा! उसे जहाँ पकड़ा और परिणमन किया, वह परिणमन अन्दर उन्मुख हुआ ही करता है। आहाहा! जिसके आश्रय से परिणमन शुद्ध हुआ, उसमें वह परिणमन उन्मुख हुआ करे, यह एकाग्रता का अभ्यास है। बात दूसरी है, बापू! ...बात दूसरी है। आहाहा! भाग्यशाली है, बापू! कि यह वस्तु कान में पड़ती है। आहाहा! यह तीन लोक के नाथ तीर्थंकर के हृदय की बातें हैं। आहाहा! यहाँ यह कहा, मिथ्यात्व के परिणाम ही अशुद्धरूप हैं। वे शुभाशुभ भाव अशुद्ध हैं, उनकी भी गिनती (गिनी) नहीं। १२१ में है। यह १२१ है न? अब १२१ (कलश) चलेगा, उसमें है। कलश-टीका में है।

पहले के पण्डित भी कड़क! ऐसे अर्थ किये, देखो न! आहाहा! और (कोई) कहे, चर्चा में पण्डितों का नहीं लेना। भाई के—फूलचन्दजी के साथ चर्चा हुई न! (उसमें ऐसा कहा कि) पण्डितों का नहीं, आचार्यों का (शास्त्राधार) लेना। आहाहा! बनारसीदास तो कहते हैं, भाई! 'कथा संस्कृत प्राकृता देशभाषा।'—चाहे तो संस्कृत हो या प्राकृत हो, या देशभाषा हो परन्तु जिसमें भगवान प्रभु आत्मा की बात है, वह बात पण्डित कहे तो भी मान्य है। आहाहा! अरे! तिर्यंच को भाषा नहीं है, परन्तु वह समकिती भी जो कहे, वह मान्य है क्योंकि तिर्यंच का समकित और सिद्ध के समकित में कुछ अन्तर नहीं है। आहाहा! एक इतनी छिपकली हो, चुहिया समकिती हो... आहाहा! और सिद्ध का समकित। समकित में कुछ अन्तर नहीं है, प्रभु! आहाहा! जिसने पूर्ण आत्मा पूर्णानन्द विश्वास में लेकर प्रतीति में लेकर, आहाहा! आदर किया है न! आहाहा! पूर्णानन्द, जिसमें पर्याय का भी आदर रहा नहीं। आहाहा! ऐसा जो पूर्ण शुद्ध चिदानन्दस्वरूप, उसका जो परिणमन होना, वह शुद्धनय का अभ्यास है और वह परिणमन अन्तर उन्मुख हुआ करे, वह एकाग्रता का अभ्यास है। आहाहा!

शुद्धनय श्रुतज्ञान का अंश है.. शुद्धनय, श्रुतज्ञान जो अवयवी है, उसका एक अवयव है, भाग है। श्रुतज्ञान जो प्रमाण है, वह स्व और पर्याय को भलीभाँति जाने, ऐसा जो श्रुतज्ञान, उस श्रुतज्ञान का शुद्धनय अंश है। एक ओर का पहलू है। श्रुतज्ञान है, वह द्रव्य को, पर्याय को, राग को दोनों को जानता है, परन्तु उसका शुद्धनय है, एक भाग है। वह भाग तो त्रिकाल को स्वीकार करता है। आहाहा!

श्रुतज्ञान अवयवी है। जैसे यह शरीर अवयवी है और हाथ-पैर अवयव है। इसी तरह श्रुतज्ञान अवयवी है और शुद्धनय उसका अवयव है। व्यवहार भी उसका नय है परन्तु यह (शुद्ध) नय ऐसा है कि वास्तव में इसे ही नय कहते हैं। नय परिच्युतता आता है न? इसमें, अभी आयेगा, अब आयेगा। नयपरिहिणां! १८० गाथा, नयपरिहिणां! ऐसा नहीं कहा, वह नय ही वास्तव में तो यही है। आहाहा! १८० गाथा। नयपरिहिणां। यह नय ही उसे कहा है। आहाहा! वह (व्यवहार) तो एक कहनेमात्र, जाननेमात्र है। आहाहा!

शुद्धनय, श्रुतज्ञान का अंश है.. आहाहा! ऐसा मनुष्यपना चला जाएगा, बापू! फिर कहाँ जाएगा? भाई! कोई सामने (नहीं देखेगा), वहाँ गौशाला नहीं है। आहाहा! अनादि-अनन्त भगवान, उसकी पकड़ और अनुभव नहीं किया... आहाहा! और राग की पकड़ की, बाहर की चीज़ की तो बात ही क्या करना? आहाहा! कहाँ शरीर, कर्म और स्त्री-पुत्र, परिवार और देश तथा गाँव, वह तो कहीं अलग... अलग... अलग (रह गये)। आहाहा! यह तो अन्तर में होनेवाला राग, उस राग की एकताबुद्धि में भगवान के स्वरूप का नाश होता है। उसकी दृष्टि में (नाश होता है), हों! वस्तु तो वस्तु रहती है। वस्तु का (नाश) नहीं है। आहाहा!

राग का एक भी छोटे में छोटा अंश, उसका जहाँ आदर है, स्वीकार है, उत्साह है, प्रेम है, रुचि है। आहाहा! वहाँ परमात्मस्वरूप का अनादर है। आहाहा! ऐसा वस्तु का स्वरूप है, भाई! कठिन लगे (परन्तु) दूसरा क्या हो? आहाहा!

जिसमें भव और भव के भाव का अभाव है। अरे...! जिसमें उसका जो अनुभव करे, उस अनुभव का भी जिसमें अभाव है, ऐसी जो चीज़... आहाहा! उस चीज़ का जो परिणमन हुआ और वह परिणमन उसकी ओर उन्मुख हुआ करना, वह शुद्धनय, श्रुतज्ञान

का एक अंश है। **और श्रुतज्ञान तो परोक्ष है, इसलिए इस अपेक्षा से शुद्धनय के द्वारा होनेवाला शुद्धस्वरूप का अनुभव भी परोक्ष है।** इस अपेक्षा से, हों!

और वह अनुभव एकदेश.. अंश है। एकदेश शुद्ध का प्रत्यक्ष वेदन है। आहाहा! **इस अपेक्षा से उसे व्यवहार से प्रत्यक्ष भी कहा जाता है।** केवलज्ञान की भाँति प्रत्यक्ष नहीं हुआ न, इसलिए उसे परोक्ष व्यवहार कहने में आया। आहाहा! है? प्रत्यक्ष भी व्यवहार से कहा जाता है। शुद्धनय अर्थात् स्वभाव की एकाग्रता, परिणमन की उन्मुखता अन्दर रहना। एक ओर राम और एक ओर गाँव। विकल्प से, पर्याय से लेकर पूरा सब, उससे हटकर भगवान आत्मा के पक्ष में आ जाना... आहाहा! वह छूटा। वह भव से छूटा। आहाहा! बाकी सब बातें हैं।

बड़े गजरथ और रथ और... आहाहा! इन्द्र बनाना... वहाँ तुम्हारे नहीं थे? इन्द्र। एक लाख और चौदह हजार का एक इन्द्र! ऐसे सोलह इन्द्र में एक अस्सी हजार का इन्द्र। यहाँ सवा पाँच वर्ष पहले (हुआ था)। पूनमचन्द! पूनमचन्द न? क्या नाम? पूरणचन्द... पूरणचन्द! एक लाख चौदह हजार का एक इन्द्र हुआ था। एक इन्द्र! हमारे यह भाई मनहर (हुआ था)। यह अस्सी हजार का इन्द्र हुआ था। अस्सी हजार का! ऐसे सोलह इन्द्र! उसमें लोगों को ऐसा हो जाता है कि आहाहा! ऐसे इन्द्र और ऐसी सभा और छब्बीस-छब्बीस हजार लोग, लोगों को हाथी पर बैठावे। उससे क्या? बापू! यह सब बाहर की चीज़ है। आहाहा! वह तो उस ओर उन्मुख होता राग है, प्रभु! आहाहा! उस राग का झुकाव तो परसन्मुख जाता है और भगवान आत्मा पवित्र का धाम, उसका परिणमन उस स्वभाव की ओर ढलता है, वह एकाग्रता है। आहाहा! समझ में आया? गाथा आयी है तो उसका जो विषय हो, वह चलेगा न, बापू! आहाहा! बाकी वाद-विवाद से पार पड़े, ऐसा नहीं है।

कुन्दकुन्दाचार्यदेव भी कहते हैं, बापू! स्वसमय-परसमय के साथ वाद करना नहीं। किस प्रकार करेगा? तू ऐसा कहने जाए कि लाख व्रत-तप और भक्ति करे, वह कुछ नहीं है। वे कहते हैं कि सब है। तब तू कहता है कि कुछ नहीं। किस प्रकार बात जँचेगी? आहाहा! और भगवान पूर्णानन्द का नाथ जहाँ दृष्टि में, अनुभव में आया, उसे पूरा आत्मा / परमात्मा प्रतीति में आ गया। यह परमात्मा होने की तैयारी हो गयी। पर्याय में परमात्मा होने की तैयारी। बापू! उसकी बातें क्या करना? वह सब बाहर की भक्ति और

बड़े हाथी (लावे), हाथी पर बैठाते हैं न? पूरा परिवार बैठावे। पाँच हजार में, दस हजार में। भाई! यह सब क्रिया तो उस काल में उसकी पर्याय उस काल में होनेवाली हो, वह होती है। उसमें कुछ तुझसे होता है, (ऐसा नहीं है)। आहाहा!

मुमुक्षु : पहले आप ऐसा नहीं कहते थे।

पूज्य गुरुदेवश्री : पहले से कहते थे। अभी से कहाँ कहते हैं? यह तो अब अधिक स्पष्टीकरण (आया)। हो..हा.. में सब लग पड़े हैं न! आहाहा! यहाँ तो पहले से कहते हैं, कि भाई! राग है, वह बन्धन का कारण है। यह राग है, उसकी दिशा परसन्मुख है। वीतराग की दशा, वह स्वसन्मुख है। आहाहा! राग है, वह ज़हर है। यह तो मोक्ष अधिकार में बहुत बार कहा गया है। आहाहा! बाह्य तरफ के झुकाव में है, वह तो सब राग है। आहाहा!

अन्तर जहाँ प्रभु पूर्ण विराजता है, उसके सन्मुख का भाव (होवे), उस शुद्ध परिणाम की एकाग्रता और वह शुद्धनय, श्रुतज्ञान का अंश है। अनुभव-अपेक्षा से उसे एकदेश प्रत्यक्ष भी कहा जाता है। **साक्षात् शुद्धनय..** पूर्ण शुद्धनय, भाषा देखो! (वह) **तो केवलज्ञान होने पर होता है।** एक ओर कहते हैं कि शुद्धनय तो भूतार्थ, वह शुद्धनय है। ग्यारहवीं गाथा। ग्यारहवीं गाथा में कहा कि '**भूयत्थो देसिदो सुद्धनयो**' भूतार्थ त्रिकाली वस्तु, वह शुद्धनय है। यहाँ कहते हैं कि शुद्धनय की परिपूर्णता केवलज्ञान में होती है। अर्थात् उसे अब आश्रय लेना रहा नहीं। जब तक शुद्धनय है, तब तक आश्रय लेता है परन्तु पूर्ण हो गया, इसलिए वहाँ अब शुद्धनय वास्तव में पूर्ण हो गया, ऐसा। आश्रय लेना रहा नहीं। इसलिए शुद्धनय केवलज्ञान होने से होता है, ऐसा कहा। फिर उसे आश्रय लेने का, परिणति को ऐसे उन्मुख होने का रहा नहीं। परिणति पूर्ण हो गयी। उसे शुद्धनय पूर्ण हुआ, ऐसा कहा जाता है। आस्रव (अधिकार में) दो जगह (आता है)। आहाहा!

यह तो जिसे भव का भय लगा हो, बापू! भव का डर! चौरासी के अवतार! आहाहा! यह निगोद, चींटी, कौआ, कुत्ता, जंगल में (रहता हो)। आहाहा! सड़े हुए पानी में सुअर पड़े हों और मानो ऐसे क्रीड़ा करते हों। सड़े हुए पानी में! वहाँ कुरावड़ में (देखा था)। सुअर सड़े हुए पानी में पड़े, वह भी उन्हें ठीक लगता है। आहाहा! अरे! भगवान! सड़ा हुआ पानी, हों! दुर्गन्धित। उसके बच्चे फिर वहाँ रहे। आहाहा! यह भी भगवान, वहाँ प्रेम करके पड़ा है। एक ओर राजा होता है और मखमल के गद्दे हों और उनमें पड़ा हो, वह

सब एक ही जाति है। आहाहा! परसन्मुख के झुकाव में तो राग है, बापू! आहाहा! और वह दुःख का अनुभव है, दुःख का वेदन है, भाई! आहाहा!

यहाँ तो शुद्धनय केवलज्ञान होने से पूर्ण होता है। साक्षात्! वहाँ फिर आश्रय लेना रहा नहीं न, इसलिए पूर्ण हो गया, ऐसा (कहा है)। एक ओर कहा कि शुद्धनय, श्रुतज्ञान का अंश है। शुद्धनय, श्रुतज्ञान का अंश है और दूसरे प्रकार से कहते हैं कि शुद्धनय की परिपूर्णता केवलज्ञान में होती है। तो केवलज्ञान में श्रुतज्ञान है? किस अपेक्षा से कहते हैं? आहाहा! एक ओर (कहे कि) शुद्धनय, श्रुतज्ञान का अंश है और यहाँ कहते हैं कि शुद्धनय तो केवलज्ञान होने से साक्षात् पूर्ण होता है। वहाँ श्रुतज्ञान रहता है? वहाँ नय है? किस अपेक्षा से कहते हैं? बापू! जो आश्रय ऐसे (लेता था), स्वद्रव्य की दृष्टि थी, वह शुद्धनय है। उसका अभी अन्दर में झुकाव था। ऊपर कहा न? (आत्मद्रव्य का) **परिणमन, वह शुद्धनय...** है। परिणमन अर्थात् ज्ञान में उन्मुख हुआ करे, वह शुद्धवृत्ति, परिणति अन्दर उन्मुख हुआ करे। वह उन्मुख करने का पूरा हो गया, इसलिए उन्हें शुद्धनय पूर्ण हो गया, ऐसा कहने में आता है। आहाहा! अब ऐसा उपदेश।

एक ओर कहते हैं कि सम्यग्दर्शन के अनुभव काल में नयातीत बात है। कोई नय नहीं, नय का पक्ष नहीं। आहाहा! और यहाँ कहते हैं कि शुद्धनय की साक्षात् पूर्णता केवलज्ञान (होने पर होती है)। ऐई! आहाहा! भाई! वीतरागमार्ग गम्भीर है, प्रभु! आहाहा! यह कहीं हल्दी की गाँठ से पंसारी नहीं हुआ जाता। यह चीज़ बहुत गहरी है। आहाहा!

एक ओर कहते हैं कि शुद्धनय... आहाहा! वह आत्मद्रव्य का परिणमन है। उसकी उन्मुखता अन्दर रहा करे, उस एकाग्रता का अभ्यास। दूसरे प्रकार से कहे कि शुद्धनय श्रुतज्ञान का अंश है। श्रुतज्ञान का भी अंश है। वह साक्षात् शुद्धनय, केवलज्ञान होने पर होता है। आहाहा! उसका अर्थ ही (यह) कि अब उसे आश्रय लेना (रहा नहीं)। उन्मुखता थी, उन्मुखता, ऐसे यह (अन्दर) की ओर उन्मुखता थी न, वह उन्मुखता पूर्ण हो गयी। इस अपेक्षा से शुद्धनय पूर्ण हो गया, ऐसा कहा। आहाहा! अब इसे ऐसे उन्मुखता में ऐसे था न, कहा न ऊपर? वृत्ति ज्ञान में उन्मुख हुआ करती है, यह था न? उसमें था न? वह अब उन्मुख हुआ करे, नहीं रहता। इसलिए उसे शुद्धनय पूर्ण हो गया, ऐसा कहने में आता है। आहाहा! कथन साधारण (लगे)। पण्डित ने कथन किया है, तो भी कितने (गम्भीर भाव

हैं)। आहाहा! बहुत कठिन काम, भाई! और जिसका फल, आहाहा! 'सादि अनन्त-अनन्त समाधि सुख में' जिसके शुद्धनय के झुकाव से उसके फलरूप से केवलज्ञान सादि-अनन्त समाधि शान्ति! आहाहा! 'सादि अनन्त-अनन्त समाधि सुख में, अनन्त दर्शन अनन्त ज्ञान सहित जब'। अनन्त दर्शन और अनन्त ज्ञान सहित। सादि-अनन्त आनन्द! उसकी दशा की प्राप्ति, वह शुद्धनय का स्वभाव सन्मुख झुकाव (हुआ), वह झुकाव पूर्ण हुआ, तब यह प्राप्ति होती है। आहाहा!

अब इसमें कोई किसी प्रकार से तर्क उठावे कि यह तो सब सातवें गुणस्थान की बात है, आठवें की बात है और जयसेनाचार्यदेव की टीका में है कि पंचम गुणस्थान के ऊपर की बात है, परन्तु मुख्यरूप से, मुख्यरूप से। आहाहा! और यहाँ अबुद्ध को समझाते हैं, अप्रतिबुद्ध को समझाते हैं। यह तो पाठ आ जाता है। अप्रतिबुद्ध है, अज्ञानी है, उसे समझाते हैं। आहाहा! 'जहाँ-जहाँ जो-जो योग्य है, वहाँ समझना वही।' उसे वैसे समझना चाहिए। भाई! ऐसा आग्रह करके अन्तर में कुछ का कुछ अभिप्राय-दुराग्रह हो जाए। तू कूट जाएगा। आहाहा!

कलश-१२१

अब यह कहते हैं कि जो शुद्धनय से च्युत होते हैं, वे कर्म बाँधते हैं:-

(वसन्ततिलका)

प्रच्युत्य शुद्ध-नयतः पुनरेव ये तु,
रागादियोग-मुपयान्ति विमुक्त-बोधाः।
ते कर्म-बन्ध-मिह बिभ्रति पूर्व-बद्ध-
द्रव्यास्रवैः कृतविचित्रविकल्पजालम्।।१२१।।

श्लोकार्थ : [इह] जगत् में [ये] जो [शुद्धनयतः प्रच्युत्य] शुद्धनय से च्युत होकर [पुनः एव तु] पुनः [रागादियोगम्] रागादि के सम्बन्ध को [उपयान्ति] प्राप्त होते हैं [ते] ऐसे जीव, [विमुक्तबोधाः] जिन्होंने ज्ञान को छोड़ा है ऐसे होते हुए, [पूर्वबद्धद्रव्यास्रवैः]

पूर्वबद्ध द्रव्यास्रव के द्वारा [कर्मबन्धम्] कर्मबन्ध को [बिभूति] धारण करते हैं (–कर्मों को बाँधते हैं) – [कृत–विचित्र–विकल्प–जालम्] जो कि कर्मबन्ध अनेक प्रकार के विकल्प जाल को करता है (अर्थात् जो कर्मबन्ध अनेक प्रकार का है।)

भावार्थ : शुद्धनय से च्युत होना अर्थात् 'मैं शुद्ध हूँ' ऐसे परिणमन से छूटकर अशुद्धरूप परिणमित होना अर्थात् मिथ्यादृष्टि हो जाना। ऐसा होने पर, जीव के मिथ्यात्व सम्बन्धी रागादिक उत्पन्न होते हैं, जिससे द्रव्यास्रव कर्मबन्ध के कारण होते हैं और उससे अनेक प्रकार के कर्म बँधते हैं। इस प्रकार यहाँ शुद्धनय से च्युत होने का अर्थ शुद्धता की प्रतीति से (सम्यक्त्व से) च्युत होना समझना चाहिए। यहाँ उपयोग की अपेक्षा गौण है, शुद्धनय से च्युत होना अर्थात् शुद्ध उपयोग से च्युत होना, ऐसा अर्थ मुख्य नहीं है; क्योंकि शुद्धोपयोगरूप रहने का समय अल्प रहता है, इसलिए मात्र अल्प काल शुद्धोपयोगरूप रहकर और फिर उससे छूटकर ज्ञान अन्य ज्ञेयों में उपयुक्त हो तो भी मिथ्यात्व के बिना जो राग का अंश है, वह अभिप्रायपूर्वक नहीं है; इसलिए ज्ञानी के मात्र अल्प बन्ध होता है और अल्प बन्ध संसार का कारण नहीं है। इसलिए यहाँ उपयोग की अपेक्षा मुख्य नहीं है।

अब यदि उपयोग की अपेक्षा ली जाये तो इस प्रकार अर्थ घटित होता है:–यदि जीव शुद्धस्वरूप के निर्विकल्प अनुभव से छूटे परन्तु सम्यक्त्व से न छूटे तो उसे चारित्रमोह के राग से कुछ बन्ध होता है। यद्यपि वह बन्ध अज्ञान के पक्ष में नहीं है, तथापि वह बन्ध तो है ही। इसलिए उसे मिटाने के लिए सम्यग्दृष्टि ज्ञानी को शुद्धनय से न छूटने का अर्थात् शुद्धोपयोग में लीन रहने का उपदेश है। केवलज्ञान होने पर साक्षात् शुद्धनय होता है।।१२१।।

श्लोक - १२१ पर प्रवचन

अब यह कहते हैं कि जो शुद्धनय से च्युत होते हैं, वे कर्म बाँधते हैं:– आगे के कलश में आयेगा। १२१ (कलश में)

प्रच्युत्य शुद्ध–नयतः पुनरेव ये तु,
रागादियोग–मुपयान्ति विमुक्त–बोधाः।

ते कर्म-बन्ध-मिह बिभ्रति पूर्व-बद्ध-
द्रव्यास्रवैः कृतविचित्रविकल्पजालम् ।।१२१।।

आहाहा! अमृतचन्द्राचार्यदेव! इस **जगत् में जो शुद्धनय से च्युत..** होते हैं अर्थात् कि शुद्ध परिणमन से भ्रष्ट होते हैं और मात्र शुभ के-राग के अशुद्ध परिणमन में आ जाते हैं... आहाहा! **शुद्धनय से च्युत होकर पुनः रागादि के सम्बन्ध को प्राप्त होते हैं..** आहाहा! एक बार तो राग का सम्बन्ध तोड़ा, स्वभाव का सम्बन्ध किया और वापस सम्बन्ध तोड़कर राग का सम्बन्ध करे, वह शुद्धनय से च्युत होता है, ऐसा कहते हैं। आहाहा! ओहो! छोटे में छोटा दया का राग, उसके साथ भी जुड़ जाए, यह उसने राग का सम्बन्ध किया। चैतन्य के स्वभाव से च्युत-भ्रष्ट हुआ। आहाहा!

शान्त मार्ग है। प्रभु का शान्त मार्ग है। प्रशान्त! आहाहा! 'प्रशान्त सुधामय जे' आता है न कहीं? सुधामय जो, ऐसा कुछ आता है। 'प्रशान्त अनन्त सुधामय जे, प्रशान्त अनन्त सुधामय जे, प्रणमु पदते वर्ते जयते', यह। यह तो श्रीमद् में आया। आहाहा! अन्तिम लाईन, अन्तिम लाईन। 'सुखधाम अनन्त सुसंत चही।' आहाहा! ध्यान में रहे। 'प्रशान्ति अनन्त सुधामय जे।' प्रशान्ति अनन्त सुधामय जे, प्रणमु पद ते वर्ते जयते। श्रीमद् का अन्तिम शब्द 'जयते' आया है। आहाहा! एकावतारी हो गये हैं। भले गृहस्थाश्रम में थे। एक वैमानिक का स्वर्ग का भव है। वे लोग मनुष्य कहते हैं, झूठ बात है। महाविदेह में गये हैं और केवलज्ञानरूप से विचरते हैं, यह अत्यन्त मिथ्या बात है। समकिती मरकर मनुष्य मरकर मनुष्य होता ही नहीं। भाई! तू महिमा करने जाता है परन्तु कुछ का कुछ हो जाता है। आहाहा! भरतक्षेत्र का समकिती वैमानिक देव के अतिरिक्त कहीं नहीं जाता। आहाहा! भले वहाँ से निकलकर मनुष्य होकर 'अशेषकर्म का भोग है' आहाहा! 'भोगना अवशेष रे, जिससे देह एक धारकर जाऊँगा स्वरूप स्वदेश रे...' आहाहा! लो! यह स्वदेश कहा। बहिन में नहीं आता? ४०१ बोल, उसमें आता है न? आहाहा!

शुद्धस्वरूप भगवान में से निकलकर विकल्प में आवे, अरे! उसे (ऐसा लगता है कि) हम कहाँ परदेश में आ चढ़े? आहाहा! स्वदेश तो यह अन्दर है! जिसके भान में अनन्त-अनन्त आनन्द, शान्ति आदि भरे हुए हैं। आहाहा! उसमें से निकलकर शुभराग में

आना, वह परदेश है। यहाँ तो शुभराग की एकता करता है, वह स्व से भ्रष्ट होता है, यह कहना है। जिसे शुभराग का प्रेम जगा है, (उसे) यह प्रेम छूट गया है, भ्रष्ट हो गया है। भगवान आनन्द का घर... आहाहा! निज घर में आनन्द है, उसका प्रेम छोड़कर निज धर में जो चीज़ नहीं है, बाहर की भटकती चीज़ है, उस राग की चीज़ में जिसे प्रेम हुआ, वह स्वभाव से च्युत हुआ। आहाहा! बाहर से तो मुनिपना होकर अट्ठाईस मूलगुण पालता हो, पंच महाव्रत पालता हो, सब हो। आहाहा! परन्तु अन्तर में भगवान शुद्ध चिदानन्द स्वरूप से भ्रष्ट हुआ और राग के प्रेम में आ गया... आहाहा! वह शुद्धनय से भ्रष्ट हुआ है। बाहर से पंच महाव्रत पाले, जंगल में बाघ, भेड़िया के बीच अकेला रहता हो। आहाहा! उससे क्या हुआ? यह आता है न? अनशन आदि बहुत किया, वह क्या है? उससे क्या है? आहाहा!

पुनः.. अर्थात् क्या? पहले (सम्यग्दर्शन) हुआ था और फिर छूट गया, ऐसा कहते हैं। पहले राग का सम्बन्ध छोड़ा था। और स्वभाव का सम्बन्ध किया था, उस स्वभाव का सम्बन्ध छोड़ दिया और फिर से राग का सम्बन्ध किया। आहाहा! वापस जो पर घर है, वहाँ आकर पड़ा, बापू! आहाहा! निजघर में से हट गया। आहाहा!

आनन्द का धाम भगवान सुखधाम! वहाँ से हट गया और राग के धाम में रसिक हो गया, उसमें रसीला हो गया। आहाहा! राग के रस में चढ़ा, वह स्वभाव से भ्रष्ट हुआ। आहाहा! ऐसा काम है। दुनिया के साथ अभी मिलान खाये, ऐसा नहीं है। आहाहा! यह तो यहाँ के लोग अब जो निकले, वे फिर (समझते हैं)। मार्ग तो बापू! यह है, भाई! आहाहा!

जगत् में जो शुद्धनय से च्युत होकर.. परिणमते हैं। शुद्ध का परिणमन छोड़कर अशुद्ध के परिणमन में (आ जाए)। पुनः रागादि अशुद्ध परिणमन के **सम्बन्ध को प्राप्त होते हैं**.. आहाहा! **ऐसे जीव,... [विमुक्तबोधाः] जिन्होंने ज्ञान को**.. छोड़ दिया है। **[विमुक्तबोधाः]** बोध अर्थात् भगवान ज्ञानस्वरूप, उसे इनने विमुक्त (अर्थात्) छोड़ दिया। आहाहा! **[विमुक्तबोधाः]** भगवान ज्ञानानन्दस्वभाव आत्म भगवान को विमुक्त अर्थात् छोड़ दिया। राग का रसीला, राग के प्रेम में रुक गया। आहाहा! अरे! ऐसी बात कहाँ है? इसके घर की बातें हैं, बापू! आहाहा! उसे एकान्त कहते हैं। यहाँ का-सोनगढ़ का जहाँ नाम आवे तो (कहते हैं) ऐ... एकान्त, ऐ... एकान्त है। यह भाषा ठीक है।

आहाहा! गाली देने की एक पद्धति ठीक निकाली। एकान्त है... एकान्त है... एकान्त है... मिथ्यादृष्टि एकान्त है। आहाहा! व्रत, तप, भक्ति और पूजा तथा जिसे मुनि की बाहर की क्रियायें हैं, उसे मुनि माने तो वह सच्चा! अरे! बापू! मुनिपना कैसा है? आहाहा!

चाहे जैसे जंगल में अकेला वर्तता हो। अकेला जंगल में से आकर आहार लेकर वापस अकेला चला जाए, ऐसी क्रिया अनन्त बार की है। वह कुछ चीज़ नहीं है। जवान अवस्था, ऐसे शरीर ठीक हो, वह चाहे जो करे। जंगल में पड़ा रहे परन्तु उस जंगल में से यह रागरहित स्वरूप है, इसकी खबर नहीं हो और विकल्प-राग उठता है, उसका रसिक हो गया। आहाहा! वह स्वरूप से भ्रष्ट हो गया।

[**विमुक्तबोधाः**] बोध, बोध अर्थात् ज्ञान से छूटा है, आत्मा से छूट गया। **ऐसे होते हुए, पूर्वबद्ध द्रव्यास्रव..** पूर्वबद्ध जो जड़ द्रव्यास्रव सत्ता में थे। आहाहा! वे **कर्मबन्ध को धारण करते हैं..** क्योंकि राग का प्रेम हुआ, इसलिए पूर्व के कर्म के बन्ध का सम्बन्ध यहाँ हुआ। अब उसे नये कर्म बँधेंगे। आहाहा! ज्ञानी को बँधते नहीं थे, वे अब यहाँ बँधेंगे, ऐसा कहते हैं। राग के रस में पूर्व के कर्म के निमित्त को राग दिया... आहाहा! उससे नये कर्म बँधेंगे। ज्ञानी को आस्रव और बन्ध का निषेध किया था। यह अल्प आस्रव, अल्प बन्ध है, उसे गौण करके ऐसा कहा था। सर्वथा नहीं है, ऐसा नहीं है। आहाहा! जब तक केवल (ज्ञान) न हो, तब तक, दसवें गुणस्थान तक भी आठ कर्म आते हैं और लोभ का आस्रव भी अबुद्धिपूर्वक है। अबुद्धिपूर्वक भी है इसके पुरुषार्थ में, इसके उल्टे पुरुषार्थ में, इसकी दशा में है न! आहाहा! वह राग कहीं कर्म के कारण नहीं है, दसवें में लोभ का अंश है, उसके पुरुषार्थ की कमजोरी, शिथिलता के कारण है। आहाहा! और वह राग आस्रव है तथा उससे नये छह कर्म बँधते हैं। आहाहा!

एक ओर यहाँ कहना कि समकित हुआ, उसे बन्धन नहीं। क्या अपेक्षा है? भाई! अनन्त मिथ्यात्व, वह अनन्त संसार है और मिथ्यात्व, वही संसार है। उसे अपेक्षा से कहा कि वह छूटा, उसे आस्रव, बन्ध नहीं है, ऐसा कहा। आहाहा! मूल तो वह है। आहाहा! पश्चात् चारित्र के दोष हैं, उनकी कुछ गिनती नहीं है। जैसे वृक्ष का मूल तोड़ा, उसके पत्ते, डालियाँ, पन्द्रह दिन में सूख जानेवाली हैं। आहाहा! जिसका मूल सुरक्षित है, उसके पत्ते

तोड़े, काट डाले, एक-एक पत्ता (निकाल डाला), वह महीने में वापस पल्लवित हो जाएगा। आहाहा! इसी प्रकार जिसने मिथ्यात्व के मूल को तोड़ डाला है... आहाहा! उसे अब राग-द्वेष और अस्थिरता के पत्ते रहे हैं, वे सूख जानेवाले हैं, नाश हो जानेवाले हैं और अज्ञानी ने राग-द्वेष मन्द किये हैं, जंगल में पड़ा है, परन्तु अन्दर में स्वरूप की दृष्टि का अभाव है... आहाहा! उसने संसार का मूल सुरक्षित रखा है। उसे कर्मबन्धन और आस्रव है। आहाहा! नग्न मुनि हो, जंगल में महा कष्ट भोगता हो परन्तु वह राग के प्रेम में पड़ा है, वह आस्रव और बन्ध में पड़ा हुआ है। आहाहा! और स्फटिक रत्न के मकान में गृहस्थाश्रमी समकिती हो। आहाहा! उसके भी अनन्त संसार के कारण आस्रव और बन्ध है नहीं, इस अपेक्षा से आस्रव और बन्ध नहीं है, ऐसा कहा। आहाहा!

धारण करते हैं.. [कृत-विचित्र-विकल्प-जालम्] जो कि कर्मबन्ध अनेक प्रकार के विकल्प जाल को करता है.. आहाहा! **(अर्थात् जो कर्मबन्ध अनेक प्रकार का है।)** यहाँ अज्ञानी को विकल्प जाल भी अनेक प्रकार की है और बन्धन भी अनेक प्रकार का है, वापस ऐसा। अनेक प्रकार की प्रकृति में रस और स्थितिवाले कर्म बँधते हैं। विचित्र कर्म बँधते हैं। आहाहा! ज्ञानी को (कर्मबन्ध का) निषेध किया। तब ऐसे अज्ञानी जंगल में बसता हो... आहाहा! स्त्री, पुत्र छोड़ा हो, जंगल में से बाहर आकर एक समय खाता हो... आहाहा! परन्तु (जो) राग के प्रेम में पड़ा है, उसे पुराने कर्म विचित्र प्रकार के नये बन्धन का कारण होगा। क्योंकि राग हो गया न वापस! आहाहा! ज्ञानी को राग है, वह राग अस्थिरता का है, वह मूल नहीं है। मूल तोड़ डाला है। आहाहा! इससे उस राग को अब जाने में देरी नहीं है, अभाव में देरी नहीं है। आहाहा! इसलिए उसे बन्ध और आस्रव नहीं है और इसे बन्ध और आस्रव है। (विचित्र भेदों के समूहवाला) **(अर्थात् जो कर्मबन्ध अनेक प्रकार का है।)** विशेष कहेंगे....

(**श्रोता :** प्रमाण वचन गुरुदेव!)